॥ श्रीहरिः ॥

छात्र मित्र

लेखक :—

पण्डित विद्याधर शास्त्री ।

[यथार्थ दर्शन, शिव पुष्पाञ्जली, आदि के रचयिता]

प्रकाशकः—

पं० देवीप्रसाद जी शास्त्री,

चूरू, (बीकानेर)

मुद्रक :—

पं० विश्वम्भर नाथ बाजपेयी के प्रबन्ध से ओंकार प्रेस
प्रयाग में छपी ।

प्रथमवार १०००] सन् १९२५ [मूल्य ।)

भूमिका

मेरे इन लेखों में कोई विशेषता वा नवीनता हो यह बात नहीं है। किन्तु इन में मेरे आन्तरिक भाव हैं और छात्रों के प्रति पूर्ण सहानुभूति है। मैं स्वयं छात्र हूं, मेरा जीवन इस छात्र संसार में ही व्यतीत हुआ है और यही कारण है कि मैंने इस विषय पर कुछ लिखने का साहस किया है।

हिन्दी भाषा में इस विषय की पुस्तकों का अत्यन्त अभाव है। विद्वान् लेखक इसकी पूर्ति करेंगे। मैंने केवल वही लिखा है जो मैंने अपने छात्र जीवन में अनुभूत किया है। संभव है यही किसी अंश में किसी छात्र का सहायक हो। इतना ही होगया तो मैं अपने परिश्रम को सफल समझूंगा।

नोबल हाई स्कूल
बीकानेर
मि० मा० शु० ४-१९८२

विद्याधरः
विद्यावाचस्पतिनां देवी प्रसाद
शास्त्रिणां तनयः।

श्री हरिः।

छात्र मित्र

एक पत्र।

प्रिय मित्र !

चिरकाल के अनन्तर मुझे अवसर मिला है कि मैं अपने विचारों को तुम्हारे सन्मुख उपस्थित करूं। तुम आज कल विद्यालय की उच्च श्रेणी में पढ़ रहे हो इसलिये छात्र के कर्तव्य तुमसे अविदत नहीं हैं तथापि तुम्हारे कथनानुसार मैं अपनी सम्मति को प्रकटित कर रहा हूं।

यह तो तुम जानते ही हो कि मनुष्य जीवन में छात्र जीवन का महत्व सब से अधिक है। ज्ञान ही मनुष्य की एक मात्र सम्पति है और उस ज्ञान की प्राप्ति इसी अवस्था में होती है। हमारे इस जीवन के नियमित दिनों में केवल इसी अवस्था के ऐसे दिन होते हैं कि जिनमें हमें सर्वस्वतन्त्रता प्राप्त होती है, और हम नाना मित्र तथा नाना विद्वानों के संसर्ग सुख का अनुभव करते हैं। मनुष्यत्व की नींव इसी अवस्था में डाली जाती है। इसलिये इसको जितना भी दृढ़ बनाया जाय उतना ही सर्वोत्तम है। यदि इस अवस्था के कार्य साङ्गोपांग सिद्ध हो जांय तो

आगामी अवस्थायें स्वयमेव सांगोपाङ्ग और आनन्ददायिनी बन जाती हैं। परमात्मा की दया है कि तुम इस अवस्था के कर्तव्यों को बहुत कुछ समझते हो। परन्तु हमारे सहस्रों मित्र अपने कर्तव्य ज्ञान से वञ्चित ही रहते हैं। वे स्कूल में जाते हैं और पाठ पढकर चले आते हैं और उसी पर अपने सम्पूर्ण समय को व्यतीत कर देते हैं। उन्हें इस कर्म क्षेत्र के विविध कर्मों का ज्ञान नहीं होता। मेरी सम्मति में विद्यार्थी को विद्यार्थी अवस्था में अपने विद्यालय की परीक्षा में ही उत्तीर्ण नहीं होना है उसे संसार में भिन्न २ समय पर जो कठिन परीक्षायें होंगी उनके लिये भी इसी अवस्था में पूर्ण अध्ययन करना है। मैं इन आगे लिखे हुए पृष्ठों में छात्र के उस ही व्यापक जीवनपर और उसके आवश्यक कर्तव्यों पर कुछ लिखूंगा। मुझे आशा है कि तुम मेरे विचार पर अवश्य ध्यान देवोगे।

ॐ नमः शिवाय ।

ईश्वर भक्तिः

यं ब्रह्मा वरुणेन्द्ररुद्रमरुतः स्तुन्वन्ति दिव्यैः
वेदैः साङ्गपदक्रमोपनिषदै गायन्ति यं सा
ध्यानावस्थित तद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो,
यस्यान्तं न विदुः सुरा सुरगणा देवाय तस्मै नमः ॥

अर्थ—ब्रह्मा, वरुण, इन्द्र, रुद्र, आदि देव जिसकी, स्तुति को निरन्तर दिव्य स्तोत्रों से करते रहते हैं, जिसके गुण गान को सामवेद के जाननेवाले वेद उपनिषदादिकों से गाते ही रहते हैं, जिसके अनिर्वचनीय रूप को योगीजन ध्यान में मग्न हो अपने शुद्ध अन्तस्तल में निहारा करते हैं और जिसके भेद को सुर, असुरों में से किसी ने भी नहीं पाया उस परब्रह्म परमात्मा के लिये बारम्बार प्रणाम है।

छात्र जीवन का मुख्य उद्देश्य विद्या प्राप्ति है। विद्या से तात्पर्य केवल लिखने पढ़ने से ही तात्पर्य नहीं है। जीवन सुधार के लिये आवश्यक प्रत्येक उपाय के ज्ञान का नाम ही विद्या है।

कलह को शान्त करो" यही ध्वनि, संसार के प्रत्येक भाग में मानव हृदय से निरन्तर स्रोत की तरह उबलती आ रही है। पर, शान्ति नहीं। क्योंकि उसे शान्ति-निकेतन का पता ही नहीं। वर्तमान संसार ने अपने छात्र-जीवन में अपने पूज्य गुरुओं से उस प्रशान्त प्रेम सरोवर के वर्णन को भी नहीं पढ़ा अब उसे शान्ति नहीं मिल सकती।

मेरे प्यारे छात्र! तू भी इस की तरह मूर्ख मत बनना। शान्त शीतल, सुगन्धित पवन के बिना तेरा मस्तिष्क तर न होगा। एक बार भी यदि उस प्रेम पवन का झोंका खालिया तो समझ लेना कि बाग खिल उठे, प्रकृति हंस पड़ी, नीलगगन भी चंद्र, चन्द्रिका से आल्हादित होगया।

क्या कहते हो? (१) मुझे मालूम नहीं कि ईश्वर कैसा है", (२) मैं प्रार्थना कैसे करूँ"।

(१) उत्तर—यह जितना जगत् तुम्हें दीख रहा है उसीका बना हुआ है, आकाश, सूर्य, चन्द्र, तारे सभी उसीने बनाये हैं। वह हर एक जगह विद्यमान है।

बनामे आँकि ओ नामे नदारद।

हर नामे कि ख्वानी सर बर आरद॥

अर्थ—यद्यपि वह कोई नाम नहीं रखता फिर भी जिस नाम से तू उनको बुलाता है वह शिर निकालता है। ये जितने गुण हैं उसी के हैं। उसको माया ही इतने रूपों में बट रही है।

ऐसी विद्या पवित्र हृदय और पवित्र भावों के बिना कभी प्रा
नहीं होती। और हृदय का पवित्र होना किसी सांसारि
चमकीली, सुगन्धित, स्वादिष्ट वस्तु वा कृत्रिम सौन्दर्य
निर्भर नहीं है। पवित्र के साथ जब संयोग होता है तभी
पवित्र होता है।

संसर्गजा दोषगुणा भवन्ति,

गुण और दोष संगति के अनुसार मनुष्य में उत्पन्न होते हैं
ईश्वर के समान ,पवित्र, जो कि स्वयं पतितपावन है,इस
मय जगत् में कोई नहीं। वह सच्चिदानन्द है। अतः जो
सत्य, ज्ञान, और आनन्द की खोज में फिर रहे हों उन्हें उस
प्रेम करना चाहिये। इसी का नाम ईश्वर भक्ति है।

ज्ञान से, आनन्द से प्रेम न कर जो अन्यत्र इसकी खोज
भटका करते हैं उन्हें अन्धकार में ठुकराने के अतिरिक्त कुछ
मिलता। जैसे सूर्य से प्रकाश, जल से, शैत्य. पृथ्वी
गन्ध निकल रहा है उसी तरह उस व्यापक जगदीश्वर से
और आनन्द का प्रवाह वह रहा है। प्यास को बुझाने के
जल की, खड़े होने के लिये किसी स्थान की और किसी
के लिये जैसे कारण की आवश्यकता है उसी तरह ज्ञान
के लिये उस ज्ञान सागर में मग्न होने की प्रत्येक विद्या
लिये अनिवार्य अपेक्षा (जरूरत) है।

शान्ति, शान्ति, शान्ति की संसार को आवश्यकता
ध को शान्त करो" "तृष्णा को शान्त करो"

कलह के शान्त करो" यही ध्वनि, संसार के प्रत्येक भाग में मानव हृदय से निरन्तर स्रोत की तरह उबलती आ रही है। पर, शान्ति नहीं। क्योंकि उसे शान्ति-निकेतन का पता ही नहीं। वर्तमान संसार ने अपने छात्र-जीवन में अपने पूज्य गुरुओं से उस प्रशान्त प्रेम सरोवर के वर्णन के भी नहीं पढा अब उसे शान्ति नहीं मिल सकती।

मेरे प्यारे छात्र! तू भी इस की तरह मूर्ख मत बनना। शान्त शीतल, सुगन्धित पवन के बिना तेरा मस्तिष्क तर न होगा। एक बार भी यदि उस प्रेम पवन का झोंका खालिया तो समझ लेना कि बाग खिल उठे, प्रकृति हंस पड़ी, नीलगगन भी चंद्र, चन्द्रिका से आल्हादित होगया।

क्या कहते हो? (१) मुझे मालूम नहीं कि ईश्वर कैसा है" (२) मैं प्रार्थना कैसे करूँ"।

(१) उत्तर—यह जितना जगत् तुम्हें दीख रहा है उसीका रचा हुआ है, आकाश, सूर्य, चन्द्र, तारे सभी उसीने बनाये हैं। यह हर एक जगह विद्यमान है।

बनामे आंकि ओ नामे नदारद।

हर नामे कि ख्वानी सर बर आरद॥

अर्थ—यद्यपि वह कोई नाम नहीं रखता फिर भी जिस नाम से तू उनको बुलाता है वह शिर निकालता है। ये जितने गुण हैं उसी के हैं। उसकी माया ही इतने रूपों में बट रही है।

ऐसी विद्या पवित्र हृदय और पवित्र भावों के बिना कभी प्रा
नहीं होती। और हृदय का पवित्र होना किसी सांसारि
चमकीली, सुगन्धित, स्वादिष्ट वस्तु वा कृत्रिम सौन्दर्य प
निर्भर नहीं है। पवित्र के साथ जब संयोग होता है तभी हृ
पवित्र होता है।

संसर्गजा दोषगुणा भवन्ति,

गुण और दोष संगति के अनुसार मनुष्य में उत्पन्न होते हैं
ईश्वर के समान, पवित्र, जो कि स्वयं पतितपावन है, इस रहा
मय जगत् में कोई नहीं। वह सच्चिदानन्द है। अतः जो छ
सत्य, ज्ञान, और आनन्द की खोज में फिर रहे हों उन्हें उसी
प्रेम करना चाहिये। इसी का नाम ईश्वर भक्ति है।

ज्ञान से, आनन्द से प्रेम न कर जो अन्यत्र इसकी खोज
भटका करते हैं उन्हें अन्धकार में ठुकराने के अतिरिक्त कुछ
मिलता। जैसे सूर्य से प्रकाश, जल से, शैत्य, पृथ्वी
गन्ध निकल रहा है उसी तरह उस व्यापक जगदीश्वर से
और आनन्द का प्रवाह वह रहा है। प्यास को बुझाने के
जल की, खड़े होने के लिये किसी स्थान की और किसी
के लिये जैसे कारण की आवश्यकता है उसी तरह ज्ञान प्रा
के लिये उस ज्ञान सागर में मग्न होने की प्रत्येक विद्यार्थी
लिये अनिवार्य अपेक्षा (जरूरत) है।

शान्ति, शान्ति, शान्ति की संसार को आवश्यकता
"क्रोध को शान्त करो" "तृष्णा को शान्त करो" "

हृदय को शान्त करो" यही ध्वनि, संसार के प्रत्येक भाग में अशान्त हृदय से निरन्तर स्रोत की तरह उबलती आ रही है। पर, शान्ति नहीं। क्योंकि उसे शान्ति-निकेतन का पता ही नहीं। वर्तमान संसार ने अपने छात्र-जीवन में अपने पूज्य गुरुओं से उस प्रशान्त प्रेम सरोवर के वर्णन को भी नहीं पढ़ा अब उसे शान्ति नहीं मिल सकती।

मेरे प्यारे छात्र! तू भी इस की तरह मूर्ख मत बनना। शान्त शीतल, सुगन्धित पवन के बिना तेरा मस्तिष्क तर न होगा। एक बार भी यदि उस प्रेम पवन का झोंका खालिया तो समझ लेना कि बाग खिल उठे, प्रकृति हंस पड़ी, नीलगगन भी चंद्र चन्द्रिका से आल्हादित होगया।

क्या कहते हो ? (१) मुझे मालूम नहीं कि ईश्वर कैसा है" (२) मैं प्रार्थना कैसे करूँ"।

(१) उत्तर—यह जितना जगत् तुम्हें दीख रहा है उसीका रचा हुआ है, आकाश, सूर्य, चन्द्र, तारे सभी उसीने बनाये हैं। वह हर एक जगह विद्यमान है।

वनामे आंकि ओ नामे नदारद।
हर नामे कि ख्वानी सर बर आरद॥

अर्थ—यद्यपि वह कोई नाम नहीं रखता फिर भी जिस नाम से तू उनको बुलाता है वह शिर निकालता है। ये जितने गुण हैं उसी के हैं। उसकी माया ही इतने रूपों में बट रही है।

(२) वह खुद यह नहीं चाहता कि तुम उसकी प्रार्थना करो। पर यह हमारी भलाई के लिये है कि हम उसकी प्रार्थना करें। संसार में प्रार्थना उसी के दर्बार में सुनी जाती है। और कोई किसी की नहीं सुनता। मनुष्य मनुष्य की इच्छा की पूर्ति यदि करता है तो बदले में भी कुछ लेना चाहता है। पर वह प्रेम से सब की बातों को सुनकर सब की इच्छा को पूर्ण करता है। यह बात जरूर है कि सच्ची बातों ही की उसके यहाँ पूछ होती है। प्रार्थना के लिये किसी गाने या देर तक आंख मूदने की जरूरत नहीं है। सच्चे हृदय से जब भी कहोगे उसकी उसी समय सुनाई होगी। जो विद्यार्थी अपनी बुद्धि को शुद्ध करने के लिये प्रतिदिन संध्या करते हैं वे अधिक ज्ञानवान होते हैं और संसार में वे अपने जीवनकाल में आदरणीय और समाज के संरक्षक होते हैं। ईश्वर भक्ति करनेवाला मनुष्य पाप नहीं कर सकता और विना पापके कभी दुःख नहीं होता बैठकर चुपचाप प्रार्थना करना तो मानसिक प्रार्थना है उसे कार्य रूप में परिणत करना हो तो बड़ों का आदर कर, सबसे प्रेम भाव रखकर और शुद्ध आचरण रखकर उसे करना चाहिये। पितृ प्रार्थना से परमात्मा बहुत प्रसन्न होते हैं।

राम, कृष्ण, शिवा जी, वाशिंग्टन, हेनरी पञ्चम, इन सब उदाहरण बना रहे हैं कि ईश्वर के ध्यान से उन्होंने संसार में कैसे २ विचित्र कार्य किये हैं। ऋषियों ने उसीका मस्ती में पाया। कवियों ने काव्य गढ़े।

प्रिय विद्यार्थी ! तू भी यदि कुछ बनना चाहता है तो अपने जीवन को उसे ही समर्पित करदे और प्रातः सायं माता, पिता, भाई, बहिन वंश, जाति, देश संसार और अपनी शुभ कामना के लिये उससे प्रार्थना किया कर। अधिक नहीं ७ दिन करना और फिर देखना कि तेरी बुद्धि का कैसा विकाश होता है।

More things are wrought by prayer,
Than the world dreams of.

विद्यार्थी

किसी बात के सच्चे स्वरूप को जान लेना ही विद्या है। विद्या को केवल पुस्तकों में ही नियमित मान लेना उचित नहीं। हृदय में जो शंका उठे उसे निवृत्त कर उसके तत्व को यथार्थ रूप से समझ लेना इसी का नाम ज्ञान है। ज्ञान और विद्या में कोई अन्तर नहीं। ज्ञान प्राप्त करने का जो अभिलाषी होता है उसी का नाम विद्यार्थी है। संसार एक विभिन्न प्रश्नों का समूह है। विद्यार्थी अवस्था में उन प्रश्नों से उत्तर सीखे जाते हैं। विद्यार्थी अवस्था कुछ वर्षों के लिये नियमित नहीं होती। विद्या जन्म से मरण पर्यन्त सीखी जाती है। मनुष्य-जन्म ही अपने स्वरूप को पहिचानने के लिये होता है और इसी लिये जन्म से ही मनुष्य अन्यान्य बातों को सीखने के लिये लालायित हो जाता है। मनुष्य के लिये विद्या प्राकृतिक है। तथापि इस बात के सत्य रहते हुए भी विद्यार्थी अवस्था भी कुछ वर्षों के लिये नियमित मानी जाती है। और उस के बाद मनुष्य को संसार के चक्र पर चढ़ना पड़ता है। विद्यार्थी अवस्था में विचारों की पुष्टि होती है और गृहस्थावस्था में उन्हें कार्य रूप में परिणत किया जाता है।

विद्यार्थी अवस्था में किन २ विचारों की पुष्टि अत्यन्तावश्यक है इसका उत्तर मिलना कठिन है। तथापि विद्वानों ने संसार के कार्यों को विभक्त कर उनके तीन रूप निश्चित किये

है। कुछ कार्य स्वार्थ साधन के लिये कुछ परार्थ साधन के लिये और कुछ कार्य प्राकृतिक नियमों की सहायता के लिये होते हैं। अर्थात् मनुष्य को बहुत से कार्य केवल अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिये करने पड़ते हैं कुछ दूसरों की तृप्ति के लिये और कुछ कार्य उसकी इच्छा और दूसरों की इच्छा के विपरीत केवल प्रकृति के ही किसी कार्य में सहायता देने के लिये करने पड़ते हैं किन्तु इन कार्यों में भी सर्व प्रथम निज स्वार्थ के कार्य ही अधिक विचारणीय होते हैं। कारण अपने स्वार्थ के विनाश से अन्य सब कार्यों का विनाश होजाता है। इस लिये विद्यार्थी को सर्व प्रथम यह चाहिये कि वह अपने स्वार्थ के कार्यों की परीक्षा कर उन पर विशेष ध्यान दे। स्वार्थ सिद्धि के लिये सर्व प्रथम अपने शरीर पर ध्यान देना अत्यन्तावश्यक है। अर्थात् स्वास्थ्य रक्षा का ध्यान सबसे प्रमुख होना चाहिये और इसके लिये यह आवश्यक है कि विद्यार्थी ब्रह्मचर्य पर पूर्ण ध्यान दे। नित्य व्यायाम करना और ऐसे पदार्थों का सेवन न करना जिनसे कि मन चंचल हो उसका मुख्य कर्तव्य होना चाहिये। मनुष्य संसार की स्थिति विचारों पर आश्रित है। विचार शुद्ध मस्तिष्क पर आश्रित है और शुद्धमस्तिष्क केवल मात्र ब्रह्मचर्य पर आश्रित है। विकृत मस्तिष्क किसी शुद्ध ज्ञान को प्राप्त कर सके यह सर्वथा असम्भव है। विद्यार्थियों के परीक्षा में अनुत्तीर्ण होने का कारण और पढ़ने पर भी किसी नवीन बात को आविष्कृत करने के लिये असमर्थ होने का कारण केवल मात्र उनकी दुर्दशा सम्पन्न शारीरिक गति ही है ब्रह्मचर्य के उपदेश

की आवश्यकता नहीं वह तो जो अपने जीवन को सु बनाना चाहते हो उनके लिये मूल मन्त्र है। यह ध्यान रहे यदि इस समय ब्रह्मचर्य को क्षीण करदिया तो जीवन के सुखका क्षीण करदिया फिर स्त्री सुख, सन्तति सुख, शान्ति की आशा करना दुराशा मात्र है।

बहुत से छात्र इसकी शिकायत किया करते हैं कि हमें को नींद नहीं आती, हमारा शिर घूमता है, हमारे हिसाब में नहीं आते, हम एक साथ २ घण्टा पढ़ाई नहीं कर सकते, हमारे पेट में दर्द होता ही रहता है, रोटी नहीं पचती, हमारी कमजोर हो गई हैं। किन्तु वे यह नहीं सोचते कि इन दुर्दशाओं के मूल कारण वे स्वयं हैं यदि वे अपने मनको में रख कर कुछ वीर्य रक्षा कर लेते तो इनके उपस्थिति की आवश्यकता ही क्या थी। अस्तु,

इनके लिखने से उन पर प्रभाव नहीं होगा बात को मैं पूर्णतया जानता हूँ। तथापि उनसे प्रार्थना कि वे कमसे कम एक मास के लिये व्यायामादि अपनी शारीरिक गति की परीक्षा अवश्य करें। शरीर के साथ दूसरा नम्बर जीविका का है। यद्यपि जीविका के छात्रावस्था में ही चिन्तित हो जाना उचित नहीं तथापि जीवन के उद्देश्य का ध्यान अवश्य रखना चाहिये। विद्यार्थी को यह अवश्य निश्चित कर लेना चाहिये कि छा वस्था के अनन्तर मैं इस कार्य को हाथ में लूंगा। इसका

होने पर यह लाभ होगा कि छात्र अभी से उस कार्य के ज्ञान पर पूर्ण ध्यान देने का प्रयत्न करेगा। तीसरी बात जो कि कम ध्यान देने योग्य नहीं है वह यह है कि उसे इस बात पर भी पूर्ण ध्यान देना चाहिये कि कैसे कर्मों के करने से वह संसार में प्रतिष्ठास्पद बन सकेगा। अर्थात् उसे अभी से मनुष्योचित व्यवहारों का ज्ञान प्राप्त करना प्रारम्भ कर देना चाहिये। विनय, लज्जा, आज्ञाकारिता मनुष्य की मनोवृत्ति का ज्ञान और प्रेम का पाठ भी उसे इसी अवस्था में प्राप्त कर लेना चाहिये। अर्थात् जहां तक हो सके, अपने उत्तम कार्यों द्वारा दूसरों के हृदयों को जीत लेने की कला में उसे निपुण बन जाना चाहिये। मित्रता विद्यार्थी अवस्था में ही होती है। गृहस्थ में प्रवृत्त होने के बाद की मित्रतायें कभी निःस्वार्थ नहीं होती और यदि लोगों ने मित्रों से धोखा खाया है तो इन्हीं मित्रों से धोखा खाया है। परन्तु विद्यार्थी अवस्था में ज्ञान मैत्री होती और इस प्रकार की मित्रता जीवन के आगामी भाग में अत्याधिक सहायक होती है। इसके साथ ही पूर्णतया विचार कर कर्तव्य अकर्तव्य को समझने की शक्ति का भी होना विद्यार्थी को अत्यन्तावश्यक है और इसके लिये उसका कर्तव्य होना चाहिये कि वह सदा विद्वानों की बातों को आदर से सुने और विद्वानों की लिखी पुस्तकों का प्रतिदिन पाठ करे। पढ़ती समय उसे देश जाति के प्रश्नों में कार्य रूप में अधिक भाग नहीं लेना चाहिये परन्तु हां अन्योन्य प्रश्नों पर अपने विचारों को सुदृढ़ अवश्य बना लेना चाहिये और सत्यता के लिये अपने

हृदय द्वार को सदा खुला रखना चाहिये । उपन्यास, और क
चार पत्रों के पढ़ने में भी कोई दोष नहीं परन्तु गुरु प्रदत्त प
पर सर्व प्रथम ध्यान देना चाहिये फिर समय मिले तो अन्य
पुस्तकों को अवश्य अवलोकित करना चाहिये । ये तो हुई स
की बातें परन्तु जो उसे बातें सीखनी हैं उनमें सर्व प्रथम त
सेवा का है अर्थात् यथाशक्ति उसे दूसरे की सेवा करने के
और दूसरे को सहायता देने के लिये तत्पर रहना चाहिये ।
कभी कोई अपरिचित उसके पास आ पहुंचे तो उसे सब
से प्रसन्न करना चाहिये और जो कुछ वह शिक्षा दे उसे
धार्य करना चाहिये ।

दूसरे लोगों की इच्छाओं पर ध्यान देना और उन
अनुसार चलना भी उतना ही आवश्यक है जितना
अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिये किसी कार्य
करना है। आजकल के विद्यार्थियों को इस विषय
शिक्षा नहीं दी जाती और यही कारण है कि वे देश
के लिये एक प्रकार से भार स्वरूप ही बन जाते हैं। वर्त
शिक्षा से शिक्षित होते हुए भारतीयों को शत वर्ष से
अधिक हो गये परन्तु उनमें इस विषय की ज्ञा
अत्यन्त न्यून है ! अपनी इच्छा और अपनी सम्मति
ही सर्वोच्च मानना आजकल की शिक्षा का प्रथम फल
किन्तु मैं अपने प्रिय छात्रों से यही निवेदन करूंगा कि तुम
आपको भूल जाना, अपनी ऐंठ कभी मत दिखाना और
की बातों को भी ध्यान से सुनना । परमात्मा ने सबको बुद्धि

है। मूर्ख से मूर्ख मनुष्य के वाक्यों में भी संसार के महान् से महान् रहस्य भरे रहते हैं। और दूसरों के लिये जो हमें कार्य करने होते हैं उनमें यह विषय सबसे अधिक उपयोगी विषय है कि हम दूसरों को भी अपने पर प्रभुत्व रखने का अवसर दे इस प्रकार उनका हम पर और हमारा उनपर प्रभुत्व होगा और संसार में एक प्रेम का प्रकाश और आनन्द का विकाश होगा। यदि पढ़कर भी इस बात की हममे न्यूनता ही रही तो समझ लेना चाहिये कि हमने इस दूसरी श्रेणी के पाठ को पढ़ा ही नहीं। इसके अतिरिक्त और भी बहुत सी बातें हैं जिन्हें कि मैं विस्तार भय से नहीं लिखता। इस पाठ का प्रथम सूत्र यही है कि दूसरे को अपने ही समान समझना।

तीसरी श्रेणी के कार्य जो प्राकृतिक हैं उनके लिये भी हमारा शिक्षित होना अत्यन्त आवश्यक है। और उनके लिये सबसे पहिली यही शिक्षा है, कि:—

> "दुख शोक जब जो आ पड़ें,
> सब शान्ति पूर्वक प्रिय! सहो।"
>
> (मैथिलीश०)

जीवन है!

पलके बाद ही न जाने क्या घटने वाला है इसका ज्ञान होना अत्यन्त दुष्कर है। अचानक ही धक्का लगने से सम्भलना

अत्यन्त कठिन होता है । परन्तु प्रकृति अपने कार्यों को अचा... ही करती है छात्र को चाहिए कि वह उन, अचानक घटनाओं... बिलकुल भी विचलित न हो और उन्हें अनिवार्य तथा ... समझकर धैर्य्य को धारण करे । लाखों छात्र छोटे २ विघ्नों के उपस्थित होने पर पढ़ने को बीच ही में छोड़ बैठते उसका कारण यही है कि उनके गुरुजन उन्हें इन बातोंके पाठ को नहीं पढ़ाते छात्रावस्था में ही मरणभयको भी दूर करनेकी विद्या पढ़ी जा... है । उसी में आत्मज्ञान और उसी में सत्य के प्रकाश की खोज की जाती है ।

दुःख ! नितान्त दुःख है !! कि भारत के प्रियपुत्र अपनी शिक्षा की अवस्था में भी इस शिक्षा से वञ्चित रक्खे जाते हैं। प्रियछात्र ! तू इस शिक्षा से रहित मत रहना । समय मिलनेपर श्रीगीता की पुस्तक का अध्ययन अवश्य करना और उसी से अपने जीवन के उत्साह और साहस की शिक्षा का लेना । हमारे सर्वव्यापक जगदीश्वर के वे कृष्ण रूप में उच्चरित हुए वाक्य प्रतिसमय विचारणीय हैं। वे इस गहरे समुद्र और निविड़ अन्धकार में नौका और किसी अनन्त तेजो राशि प्रकाश के समान हैं। इस शिक्षा से वियुक्त विद्यार्थी को सदैव सत्य से वियुक्त रहना पड़ता है । इन तीनों कार्यों की शिक्षा में किसी कार्य को भी कम महत्व का न मानना । स्वार्थ, परार्थ और प्राकृतिक सभी विषयों की शिक्षा में विद्यार्थी को पूर्ण बनना चाहिये । मेरा यह लेख छोटा है इसमें मैं विस्तृत आलोचना नहीं कर सकता किन्तु विद्यार्थियों से यही प्रार्थना है कि वे इस

यों पर अपने गुरुजनों से प्रश्न अवश्य किया करें।

उपर्युक्त में विद्यार्थी के विचारों की शुद्धि का वर्णन किया ग। अब संक्षिप्त रीति से यह बता देना चाहता हूँ कि उसे अपने स्कूल (शिष्यकुल) में किस प्रकार रहना चाहिये।

(१) विद्यार्थी का सर्वप्रथम कर्तव्य यह है कि वह अपने कुल के नियमों पर पूर्ण ध्यान दे, और अपने व्यवहार को न्हीं के अनुसार करे।

(२) गुरुजन की आज्ञा को सानन्द करने के लिये उद्यत रहे और प्रतिसमय गुरुजनों को अपने शुद्ध व्यवहार से प्रसन्न करने के लिये तत्पर रहे (आजकल के छात्र इस गुण से अनभिज्ञ होते हैं और यही कारण है कि गुरुजन भी उन्हें पूर्ण शिक्षा नहीं देते) गुरु को प्रसन्न करने की यही रीति है कि उसके समक्ष किसी प्रकार की धृष्टता न करे और उसके कार्य को पूरा करदे।

(३) समय विभाग अवश्य करे और समय के एक क्षण को भी व्यर्थ न खोवें। आजकल के विद्यार्थी गप्पबाजी के अत्यन्त शौकीन होते हैं। बातें तो सभी करते हैं परन्तु विद्यार्थियों को चाहिये कि वे अपनी गप्पों के विषयों को भी निश्चित करलें। सांसारिक बातों और एक दूसरे की निन्दा या आपस की ईर्ष्या की बातों को न कर उन्हें किसी शास्त्रीय विषय या जीवन के प्रश्नों पर विचार करना चाहिये।

(४) स्कूल के प्रतिकार्य में भाग लेना 'खेल' सभा आदिकों

में पूर्ण ध्यान देना। बड़े बड़े वक्ता अपने स्कूल के दिनों में ही प्रसिद्ध हुए हैं। विद्यार्थियों को व्याख्यान की शक्ति अवश्य बढ़ानी चाहिए, व्याख्यान सहस्त्रों को अपने पक्ष में कर सकता है और १ घण्टे के व्याख्यान से ही एक बड़े से बड़े नगर में सब लोगों का श्रद्धा भाजन बन जाता है।

(५) अपने आचरण पर पूर्ण ध्यान रखना और सबके साथ प्रेम व्यवहार रखना। (वही छात्र सब से उत्तम है जो कि अपनी छाप दूसरों पर भी लगा जाता है और जिसे कि उसके जाने के पीछे भी उसके गुरुजन और सहचर याद करें।

(६) अपने पाठ पर पूर्ण ध्यान देना और पुस्तक के प्रति शब्द के सारांश को पूर्णतया समझना। आजकल के छात्रों में पढ़ाई का बहुत बड़ा दोष यही है कि वे स्वयं अपने गुरुओं से पढ़ाई सम्बन्धी किसी प्रकार का प्रश्न नहीं करते। इसके अतिरिक्त गुरुमुख से निस्सृत वाक्यों पर ध्यान न देकर वे अधिकतर अपने नोटों पर अधिक विश्वास रखते हैं। पुस्तक के पाठ को पढ़ अवश्य लेते हैं किन्तु उसके आन्तरिक भावों को नहीं समझते और न अन्यान्य पुस्तकों ही को पढ़ते हैं। उन्हें चाहिये कि पढ़ते समय सर्वथा दत्तचित्त हो जांय।

संक्षेपरूप से इस पर भी विचार कर चुका अब मैं अपने लेख के अन्त में छात्र को उसे अपने छात्र जीवन के अन्त में क्या करना चाहिये इस विषय में कुछ कह कर प्रिय मित्र से भिन्न होऊंगा।

य! छात्र जीवन में जिन विचारों को तुमने अपने हृदय

पूजित किया है उन्हें बाहर निकलते ही, ठुकरा मत देना। नी तिरस्कार मत दिखाना। जिन जिन कामों के लिये तुमने तिज्ञा की है उन्हें भूल न जाना। कम से कम एक आधी को अवश्य पूरी करना। जिन सहचरों के साथ इतने दिन खेले और पढ़े हो उन्हें हृदय से बाहर मत कर देना। किसी पद को पाकर उन्मत्त मत हो जाना। पद क्षणिक होते हैं संसार में राम कृष्ण भी काल के गाल में फँस गये। बड़े २ योधा और घमण्डी भी (हरहर कर) चले गये किन्तु जिन्होंने अपने भावों को सच्चा रखा है और जिन्होंने मनुष्य जाति से प्रेम किया है वे अब भी अपने यशरूपी शरीर से जीवित हैं और हम उनकी पूजा करते हैं।

जिन गुरुओं के आगे तू इतनी बार झुका है उन्हें अपने सन्मुख झुकवाने का प्रयत्न मत करना। उन्हें सदा आदर ही की दृष्टि से देखना। उनके एक एक आशीर्वाद से तेरे मंगल का द्वार खुल जायगा। जिस विद्यालय में तुमने शिक्षा पायी है उसके लिए सदैव कृतज्ञ रहना और समय २ पर यथा शक्य उसकी उन्नति में भाग अवश्य लेना। भलाई करने के अवसर को हाथ से कभी मत जाने देना। दूसरों के लिये आदर्श स्वरूप बनना और अपने वंश को तरह से समुज्वल बनाने का प्रयत्न करना। श्रीभर्तृहरि के इस श्लोक (उपदेश) पर पूर्ण ध्यान रखना—

॥ श्री हरि: ॥

मातृ पितृ भक्ति-

मातृदेवो भव पितृदेवो भव । वेदाज्ञा ।

माता और पिता की भक्ति और आदर के विषय में कारणों को उपस्थित करना ही एक तरह से महान् पाप है। उन पर श्रद्धा प्राकृतिक है। संसार में यदि हम हृष्ट पुष्ट हैं विद्यावान हैं तथा चैन रहे हैं तो यह इनके अतिरिक्त किसकी कृपा का फल है। माता ही हमारी अज्ञानावस्था में रक्षा कर हमें ज्ञानवान् बनाती है। वही अपना दूध पिला पिला कर अपने आप सैकड़ों दुःख सहकर हमें इतना बड़ा बनाती है। उसके प्रति भी यदि हमारी भक्ति न हो तो हम जैसा चाण्डाल और नीच इस संसार में कौन होगा पिता स्वयं परमात्मा ही इस रूप में अवतारित होता है। पिता जितना हमारे हित को हमारी प्रवृत्ति को समझता है उतना और कोई नहीं। वह हमको संसार में रहने योग्य बना देता है। जिनके माता पिता नहीं हैं वे अनाथ हैं। माता पिता के अतिरिक्त संसार में रक्षक मिलने दुर्लभ हैं। केवल एक यही प्रेम शुद्ध और स्वार्थ रहित होता है। बालक कितना भी दुष्ट और नीच क्यों न हो मा को तो उस पर ममता ही रहेगी।

कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति।

खोटे बेटों की कमी नहीं पर कुमाता का नाम संसार में अ
क नहीं सुना गया। पितृ भक्ति ही सम्पूर्ण कल्याणों आदि
साधन है यह श्रुति की आज्ञा है। पुराणों में कृत वोध की क
प्रसिद्ध है। वह अपने पिता की आज्ञा को न मान कर कित
दुःखित हुआ और अन्त में पितृ सेवा से किस पद को प्र
हुआ यह बात भारतीय बच्चे २ को ज्ञात है। पितृ-भक्त
कहता है।

नाहं जाने तपोदान व्रत यज्ञादिकं चयत्।
पित्रोश्चरणयोः सेवामेवैकां जान एवहि।
यन्मे ज्ञानं समुत्पन्न पित्रो सेवा फलं च तद्

मैंने कभी कोई व्रत नहीं किया कभी कोई यज्ञ अथवा
नहीं किया और न कभी दान ही दिया मैं केवल पिता के
की सेवा करने को जानता हूं और उसी का यह फल है कि
यह दिव्य ज्ञान प्राप्त हुआ है; भारतवर्ष का प्राचीन इ
पितृ भक्तों से भरा हुआ है। अनेक बालकों ने पिता की
पर हंसते २ अपने प्राणों को त्यागा है।

राजा शूद्रक की जाती हुई राज्य लक्ष्मी को प्रसन्न क
बीरवर अपने पुत्र को बलि देता है। पुत्र से पूछा ज
शक्ति धर ! क्या करता है।

श्लाघ्यं एवं विधे कर्मणि देहस्य विनियोगः श्लाघ्यः ॥

पिता की आज्ञा के अनुसार ऐसे कार्य में अपने देह को समर्पित कर देना परम प्रशंसनीय है। धन्य भारत वसुंधरे! धन्य! तेरे ही में राम और तेरे ही में मोरध्वज सुत रत्नाकर उत्पन्न हुए। किन्तु हन्त! प्रिय छात्र! परमशोक!! बताओ तुम्हारी कक्षा में अथवा तुम्हारी गली में ही ऐसे कितने लोग हैं जो अपने माता पिता की सेवा करना अपना परम धर्म समझते हैं। गालियें देकर उनको इधर उधर की सुनाकर दुःखित करना ही आजकल के युवकों का परम धर्म रहगया है। इन्हें पता नहीं कि इसके लिये इन्हे कितने वर्षों तक रौरव नरक में रहना होगा। बार बार जन्म लेंगे और जन्मते ही अनाथ बन जायंगे। प्रिय छात्र! तू कभी भी ऐसा न करना तेरा कर्तव्य यही है कि शान्ति पूर्वक जो पिता जी कहें उसे सुनना और जिस मार्ग पर वे चलावे उसी पर चलना पिता स्वयं नशेबाज या और दोषों से पूर्ण भी होगा तो तुझे उनके लिये कभी भी नहीं कहेगा। अपने बालक के लिये पिता के हृदय में भलाई ही सुझती है। वे मूर्ख और चाण्डाल हैं जोकि पिता की निन्दा करते हैं। उनमें बहुत से तो अपनी स्त्रियों के दब्बू हुआ करते हैं। संसार में सम्मान पितृ भक्तों का ही होता है पिता ने स्वयं यदि अपने पुत्र की निन्दा कर दी। तो समझ लो कि सर्वव्यापक परमात्मा ने उसकी निन्दा कर दी। पितृ भक्ति के लिये द्रव्य के खर्चने की

कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति।

खोटे बेटों की कमी नहीं पर कुमाता का नाम संसार में अ
तक नहीं सुना गया। पितृ भक्ति ही सम्पूर्ण कल्याणों आदि का
साधन है यह श्रुति की आज्ञा है। पुराणों में कृत बोध की कथा
प्रसिद्ध है। वह अपने पिता की आज्ञा को न मान कर कितना
दुःखित हुआ और अन्त में पितृ सेवा से किस पद को
हुआ यह बात भारतीय बच्चे २ को ज्ञात है। पितृ-भक्त
कहता है।

नाहं जाने तपोदान व्रत यज्ञादिकं चयत्।
पित्रोश्चरणयोः सेवामेवैकां जान एवहि।
यन्मे ज्ञानं समुत्पन्न पित्रो सेवा फलं च तत्।

मैंने कभी कोई व्रत नहीं किया कभी कोई यज्ञ अथवा
नहीं किया और न कभी दान ही दिया मैं केवल पिता के च
की सेवा करने को जानता हूं और उसी का यह फल है कि
यह दिव्य ज्ञान प्राप्त हुआ है; भारतवर्ष का प्राचीन इति
पितृ भक्तों से भरा हुआ है। अनेक बालकों ने पिता की
पर हंसते २ अपने प्राणों को त्यागा है।

राजा शूद्रक की जाती हुई राज्य लक्ष्मी को प्रसन्न करने
व बीरवर अपने पुत्र की बलि देता है। पुत्र से पूछा जाता
शक्ति धर! क्या करता है।

ज्ञाप्य एवं विधे कर्माणि देहस्य विनियोगः श्लाघ्यः ॥

पिता की आज्ञा के अनुसार ऐसे कार्य में अपने देह को समर्पित कर देना परम प्रशंसनीय है। धन्य भारत वसुंधरे! धन्य! तेरे ही में राम और तेरे ही में मोरध्वज सुत रत्नाकर उत्पन्न हुए। किन्तु हन्त! प्रिय छात्र! परमशोक !! बताओ तुम्हारी कक्षा में अथवा तुम्हारी गली में ही ऐसे कितने लोग हैं जो अपने माता पिता की सेवा करना अपना परम धर्म समझते हैं। गालियें देकर उनको इधर उधर की सुनाकर दुःखित करना ही आजकल के युवकों का परम धर्म रहगया है। इन्हें पता नहीं कि इसके लिये इन्हें कितने वर्षों तक रौरव नरक में रहना होगा। बार बार जन्म लेंगे और जन्मते ही अनाथ बन जांयगे। प्रिय छात्र! तू कभी भी ऐसा न करना तेरा कर्तव्य यही है कि शान्ति पूर्वक जो पिता जी कहें उसे सुनना और जिस मार्ग पर वे चलावें उसी पर चलना पिता स्वयं नशेबाज या और दोषों से पूर्ण भी होगा तो तुझे उनके लिये कभी भी नहीं कहेगा। अपने बालक के लिये पिता के हृदय में भलाई ही सूझती है। वे मूर्ख और चाण्डाल हैं जोकि पिता की निन्दा करते हैं। उनमें बहुत से तो अपनी स्त्रियों के दब्बू हुआ करते हैं। संसार में सम्मान पितृ भक्तों का ही होता है पिता ने स्वयं यदि अपने पुत्र की निन्दा कर दी। तो समझ लो कि परमात्मा ने उसकी निन्दा कर दी।

आवश्यकता नहीं केवल आज्ञाकारी बनना। भारत की वर्तमान दशा में भेद भाव का मूलकारण यही है कि भारतीय बालक पितृ भक्त बनने से रह गए अत एव उनके लिये कोई एक केंद्र नहीं रहा इसी लिये भाई २ में द्वेपाग्नि जल उठी" लोग विरुद्ध धर्मों को एकत्र मिलाना चाहते हैं पर वे मूल कारण पर ध्यान नहीं देते हमारे धर्म शास्त्र का कहना है कि मूल धर्म के नष्ट होते पर विशेष धर्म स्वयं नष्ट होजाते हैं। परस्पर संगठन का कोई मूल धर्म वर्तमान भारत में नहीं इसी लिये हमें आशा नहीं होती कि इसमें शान्ति होगी। प्रिय छात्र मैं तुझे एक मूल मन्त्र बता देता हूं इसी को जप अर्थात् पिता की सेवा कर तुझे अपने आप समृद्धि मिलेगी तुझे विद्या प्राप्त होगी तुझे संसार में आनन्द का मार्ग मिल जायगा और यदि उससे भी विरुद्ध हो गया तो समझ ले अबतू शैतान के चक्कर में चढ़गया घूमता फिरेगा और साथ ही औरों को भी ले डूबेगा।

यही मेरा उपदेश और यही मेरी प्रार्थना है इस सबक को दिल में लिख लेना भूलना नहीं। आगे तेरे भी बालक होने वाले हैं तूने पिता को सुख दिया होगा तो वे तुझे सुख देंगे। नहीं तो "देखम देखी सौदा" तेरी खोपड़ी की भी खैर नहीं। जेन्टलमैन को भूल जाना सरल पिता के हृदय में कभी जोट न पहुंचा देना पिताजी यदि ग्रामीण कृपक हैं और तुम यदि पढ़ कर प्रिंसिपल बने बैठे याधीश बने हो तो भी अपने आप को उनसे वेही हैं तेरे जन्म दाता पालक और पोषक

ई इन बातों को ध्यान जमें रक्खेगा तो तू स्वयं समाज में आदर-
णीय होगा अपने पिता को ही नहीं किन्तु अपने सहयोगियों के
माता पिता को भी आदर की दृष्टि से ही देखना । माता पिता के
आशीर्वाद से अंधेरी रात भी चाँदनी बन जायगी सच समझना
यह वेद की आज्ञा परमात्मा का अटल नियम है ।

आवश्यकता नहीं केवल आज्ञाकारी बननां। भारत की वर्तमान दशा में भेद भाव का मूलकारण यही है कि भारतीय बालक पितृ भक्त बनने से रह गए अत एव उनके लिये कोई एक केंद्र नहीं रहा इसी लिये भाई २ में द्वेपाग्नि जल उठी" लोग विरुद्ध धर्मों को एकत्र मिलाना चाहते हैं पर वे मूल कारण पर ध्यान नहीं देते हमारे धर्म शास्त्र का कहना है कि मूल धर्म के नष्ट होते पर विशेष धर्म स्वयं नष्ट होजाते हैं। परस्पर संगठन का कोई मूल धर्म वर्तमान भारत में नहीं इसी लिये हमें आशा नहीं होती कि इसमें शान्ति होगी। प्रिय छात्र मैं तुझे एक मूल मन्त्र बता देता हूं इसी को जप अर्थात् पिता की सेवा कर तुझे अपने आप समृद्धि मिलेगी तुझे विद्या प्राप्त होगी तुझे संसार में आनन्द का मार्ग मिल जायगा और यदि उससे भी विरुद्ध हो गया तो समझ ले अबतू शैतान के चक्कर में चढ़गया घूमता फिरेगा औ साथ ही औरों को भी ले डूबेगा।

यही मेरा उपदेश और यही मेरी प्रार्थना है इस सबक को दिल में लिख लेना भूलना नहीं। आगे तेरे भी बालक होने वाले हैं तूने पिता को सुख दिया होगा तो वे तुझे सुख देंगे। नहीं तो "देखम देखी सौदा" तेरी खोपड़ी की भी खैर नहीं। जेन्टलमैनी को भूल जाना सरल पिता के हृदय में कभी चोट न पहुंचा देना। पिताजी यदि ग्रामीण कृषक हैं और तुम यदि पढ़ कर प्रिंसिपल बने बैठे हो या न्यायाधीश बने हो तो भी अपने आप को उनसे उच्च न समझना वे [illegible] तेरे जन्म दाता पालक और पोषक

है इन बातों के ध्यान जमें रक्खेगा तो तू स्वयं समाज में आदर-णीय होगा अपने पिता को ही नहीं, किन्तु अपने सहयोगियों के माता पिता को भी आदर की दृष्टि से ही देखना। माता पिता के आशीर्वाद से अंधेरी रात भी चांदनी बन जायगी सच समझना यह वेद की आज्ञा, परमात्मा का अटल नियम है।

॥ श्री हरि ॥

अवसर

समय [अवसर] चुकि पुनिका पछताने ।
का वर्षा जब कृषी सुखाने ॥

"का हानिः समयच्युतिः" भर्तृहरि ।

जीवन विजय और पराजय के चक्र पर चढ़ा ही रहता है। विजित भी मनुष्य ही होते हैं और पराजित भी मनुष्य ही। जो अवसर को पहिचान कर उसे रीता नहीं जाने देते वे ही विजयी हैं और जो अवसर के आने पर सुस्त हो समय को वृथा व्यतीतकर देते हैं वही पराजित हैं। भाग्य की प्रबलता निःसन्देह हमें अपने अधीन रखती है किन्तु अधिकतर दुर्भाग्य को हम स्वयं बुला लिया करते हैं। परमात्मा ने सबको समान अधिकार दिये हैं वह प्रति मनुष्य के जीवन में एक बार नहीं सहस्रों बार ऐसे अवसरों को भेजता है जबकि यदि हम चाहें तो अपने आप को महा भाग्यशाली बना सकते हैं। जीवन का प्रतिकार्य ही एक अवसर है। यदि हम उस कार्य को भली भांति समझ लें और उसे पूरी तरह से पूरा करदें तो वही हम को सर्वोच्च बना सकता है। संसार का कोई भी कार्य छोटा नहीं। विद्याध्ययन का समय मनुष्यके जीवन में सबसे बड़ा अवसर है किन्तु ऐसे

बहुत विरले हैं जो कि इस शुभअवसर को उपयोगमें लाते हैं हम जब किसी अन्य अपरिचित अथवा परिचित मनुष्य से बात चीत करते हैं उस समय भी एक महावसर होता है। यदि हम उस अवसर पर सत्य और मधुर भाषण कर तो उसी समय वह अवसर हमें जीवन पर्यन्त प्रेम करने वाले लाखों मित्रों को दे सकता है। किन्तु मनुष्य इन बातों पर ध्यान ही नहीं देता। चलते चलते ही ऐसे अनेक अवसर आते हैं जब कि हम अपने भाइयों की कई तरह की सेवा कर सकते है और उन्हें कई तरह की सहायता दे सकते हैं। किसी दीन को एक पैसा दे देना, किसी अन्धेको रास्ता बता देना, बालकों को पुचकारकर रास्ते से अलग कर देना, जिससे एकबार भी बात हो चुकी हो उससे राजी खुशी पूंछ लेना, किसी बूढ़े या बुढ़िया के बोझ को उठादेना ये बातें दीखने को तो बहुत तुच्छ प्रतीत होती हैं पर ध्यानसे देखा जाय तो ये भी महाअवसर हैं। ऐसे मनुष्य के प्रति मनुष्यों की श्रद्धा होना स्वाभाविक है और यदि अन्यजन हमें श्रद्धा की दृष्टि से देखने लगें तो इस से अधिक लाभ क्या हो सकता है। ये ही नहीं हमारे चुप चाप बैठे रहने पर भी अनेक ऐसे उत्तम अवसर आते है कि हम उस समय भी जीवन के विजय की नींव को दृढ बना सकते हैं। चुपचाप बैठे यदि हम अपने जीवन के गति की परीक्षा करें और उन बातों का पता लगावें जिससे हम उन्नत होते जा रहे हैं अथवा अवनत होते आ रहे है तो जीवन की दौड़ में हमारा पहिला नम्बर आ सकता है। यह

निश्चित समझो कि विघ्न कहीं से तथा और जगह से नहीं आते वे हमारे ही दोष होते हैं जो कि समय पर धोका दे जाते हैं। इसलिये ऐसे दोषों को दूर करनेकी रीतियों को ढूंढ निकालने के लिये उस समय के अतिरक्ति कोई उत्तम समय नहीं होता परन्तु उस अवसर में भी यदि हम शैतान के चंगुल में फंसे रहें तो यही हमारा दुर्भाग्य है। किसी पर एक वार देखना भी सबसे बड़ा अवसर है यदि हमारी द्रष्टि में शुद्धभाव व और प्रेमकी झलक होगी तो यह निश्चित समझो कि वह पदार्थ जिस पर हमारी द्रष्टि पतित हुई है हमसे पृथक नहीं हो सकता वह स्वयमेव हमारी तरफ खिंचता हुआ चला आयेगा। और यदि एक ही वार नाक सिकोड़कर अथवा उदासीन द्रष्टि से उसे देख लिय तो वह सदा के लिये हमें अपना शत्रु समझ बैठेगा औ में विघ्न करने को उद्यत हो जायगा। अवसर आता है कि हम जनता के कामों में अर्थात् सभाओं और पुस्तकालयों में भाग किन्तु हम उस अवसर का उपयोग नहीं करते। यदि हम वह समय पर पहुंच और विचार कर अपने मत को प्रकटित करें त सहस्रों मनुष्य हमारी तरफ ध्यान से देखेंगे। और यदि हमा वाक्यों को वेद वाक्य मानने लगेंगे। और यदि उसी समय को ऐसी वैसी बात कह दी अथवा किसी कार्य में शिथिलता दिखाद तो बस उसी दिन से हम गप्प बाज़ अथवा वृथा बकवाद स लगेंगे। इन्ही छोटे अवसरों पर ध्यान से काम य देश का नेता और राष्ट्रपति तक बन जाते।

और इन्हीं अवसरों पर अपनी बनी बनाई प्रतिष्ठा का भी नाश कर बैठते हैं। पत्र लिखना सब से बड़ा अवसर होता है यदि उसे बुद्धिमानी और सच्चे भावों से लिखा जाय तो वही शत्रु को भी मित्र में परिणित कर देता है और उसके द्वारा हम सर्वोच्च से सर्वोच्च मनुष्य तक के पास आनन्द से पहुंच सकते हैं। किन्तु मनुष्य समाज में एक एक पत्र से सहस्त्रों मित्रतायें टूट जाती हैं और एक एक पत्र से लाखों मनुष्यों के सिद्धान्तों पर धूल जम जाती है। अवसर को न पहिचानना ही इसका मूल कारण है। बहुत से साथी अवसर को बिना समझे बूझे कुछ का कुछ कह बैठते हैं और उसके फल में उन्हें सदा के लिये लज्जित होना पड़ता है। अतः कहने का तात्पर्य यह है कि समय को कभी नहीं खोना चाहिये और जब जब अवसर उपस्थित हों उस समय अचूक निशाना मार ही देना चाहिये। बदला लेने, धन कमाने और नाम पाने के लिये भी अवसरों की कमी नहीं होती। कमी यही है कि हम उसे हाथ से खो बैठते हैं।

अनेक बार ऐसा होता है कि दो मित्र परस्पर में झगड़ते हुए निर्णय के लिये हमारे पास आते हैं उन दोनों पर अपना प्रभुत्व जमाने के लिये यह सब से बढ़िया अवसर है। उस समय यदि हम न्याय करें तो हम पञ्च बन सकते हैं। और काम पड़ने पर सैकड़ों हमारी सहायता कर सकते हैं। यदि कभी कोई मनुष्य हम से अपने कार्य के लिये अथवा सम्मति देने के लिये प्रार्थना करता है तो यह भी शुभावसर है। उसके उस एक ही काम को

निभा देने से हम अपने दश कामों को औरों का निभा सकते हैं। प्रतिक्षण में अवसर उपस्थित रहता है यह कभी नहीं समझना कि अभी अवसर नहीं आया। एक काम के लिये नहीं तो दूसरे काम के लिये सही। उसे ही पूरा करें। प्रत्येक काम एक दूसरे की सहायता करता है जो एकही काम के पीछे दूसरे कामों की पर्वाह नहीं करते वे भूल करते हैं। विपति का आना और विघ्न का होना भी छोटा मोटा अवसर नहीं होता उस समय भी यदि हम सावधान रहें तो दूसरों को भी ऐसे समयों में सावधान रहने का पथ बता सकते हैं। अतः प्रियछात्र! मेरा मेरा:यही कामना है कि तुम किसी अवसर को अपने हाथ से व्यर्थ मत जाने देना। ध्यान रखना कि—

> There is a tide in the affairs of men,
> Which, taken to flood, leads on to fotrune
> Omitted, all the voyage of their life
> Is bound in shallows, and in miseries:

संसार उन्हीं के लिये सुखमय है जो कि इसके रहस्यों को समझते हैं और अवसर सबसे बड़ा रहस्य है जो इस रहस्य को पहिचान लेते हैं वे अपने आपही सुख की सामग्री को एकत्रित कर लेते हैं।

श्री हरिः।

गुरु भक्तिः।

बन्दौं गुरुपद पदुमपरागा, सुरुचि सुबास सरस अनुरागा।
अमिय मूरि मय चूरण चारु, शमन सकलभवरुज परिवारू॥

श्री गुरु चरण कमलेषु प्रणामः।

वस्तुतः भारतीय आदर्श संसार में अद्वितीय है। गुरु भक्ति के जितने और जैसे उदाहरण इस पवित्र देश में मिलते हैं उतने अन्यत्र नहीं। वर्तमान कालीन शिक्षित पाश्चात्य देशों की महिमा निराली है। उनकी शिक्षा में गुरु साक्षात् मान कर में परमात्मा नहीं किन्तु एक बकने की मशीन है। दुर्भाग्य वश भारतीयों को भी उन्हीं महानुभावों की प्रणाली के अनुसार अपने बालकों को शिक्षित करना पड़ता है और उसका सबसे असह्य फल यह हो रहा है कि इस राम, कृष्ण शिवाजी समान गुरु भक्तों से अलंकृत वसुन्धरा से यह परम पवित्र उद्देश्य नष्ट प्राय सा होता जा रहा है। परमात्मा न करे कि भारत को कभी ऐसा दिन देखना पड़े कि शुद्ध प्रेम का एक यह विलक्षण रूप इस लोक से ही उठ जाय। आओ! मेरे प्यारे भारतीय छात्र! आओ, मैं तुम्हें बताता हूं कि गुरु भक्ति से हमें कितने अलभ्य रत्न मिलते हैं।

वर्तमान शिक्षित हमारी प्राचीन प्रणाली की हंसी उड़ाते हैं। गुरुजनों पर दोष लगाते हैं कि वे अपने शिष्यों से कुली की तरह काम लेते थे। क्यों नहीं? आजकल की शिक्षा में दोष दिखाने के अतिरिक्त सिखाया ही क्या जाता है।

हमारा प्रश्न यही है कि जिन बालकों ने अपने गुरु की सेवा कर सेवा का सबक नहीं सीखा, क्या आप उनसे, पितृ सेवा, मातृ सेवा, देश सेवा, राज सेवा की आशा करते हैं? असम्भव, सर्वथा असम्भव, उन्होंने सेवा का पाठ पढ़ा ही नहीं। गुरु सेवा में गुरु जी स्वयं बलात्कार से सेवा का कार्य नहीं कराते परन्तु भक्ति से छात्र ही स्वयं सेवा किया करते हैं। सेवा का क्या फल है इसको वे ही जानते है जिन्होंने कभी सेवा की है। एक छोटे से ही दृष्टान्त को लीजिये गुरु जी घूमने के लिये जाते हैं आप अपनी पेंठ में उनके साथ नहीं। बताइये आपने उस समय में क्या किया? यदि आप साथ होते तो चलते २ हृदय के १० प्रश्नों का उत्तर पूंछ लेते, अथवा स्वयं गुरू जी किसी न किसी विषय पर कुछ कहते जाते और तुम लौटकर अपने को अनेक नवीन बातों से भरा भण्डार पाते। रात्री का समय हुआ आप गुरू जी के पास बैठे गर्मी में पंखा झल रहे हैं और किसी कठिन प्रश्न को सुलझा रहे हैं। यह काम कक्षा में नहीं हो सकता। कक्षा में आप अकेले नहीं, सैकड़ों विद्यार्थी हैं। सेवा करती समय आप उनसे एक बात को दश बार पूंछ सकते हैं। अस्तु।

किन्तु ये बातें अंग्रेजी वालों के नसीब में नहीं। इसके फल को संस्कृत के विद्यार्थी ही जानते हैं। अंग्रेजी वाले गुरु जी को दक्षिणा देंगे तो कुर्सी में पिन लगा देंगे। कभी कुछ कह दिया तो गली में या खेल में खबर लेंगे। और तो क्या ऐसे भी उदाहरण हैं कि सैकड़ों स्कूलों को जला दिया। गुरु भक्ति की परम सीमा है। अंग्रेजी के विद्यार्थी गुरू को गुरू नहीं अपना नौकर समझते हैं और कहीं मास्टर जी ट्यूशन करते हों तब तो कहना ही क्या छात्र के घर का अदने से अदना नौकर भी मास्टरजी का मास्टर बन जाता है। किन्तु यह उनकी भारी भूल है। विद्या, शिक्षा, एक ऐसी शक्ति है जो कि नम्रता और शुद्ध हृदय के बिना प्राप्त हो ही नहीं सकती। बहुत से छात्र गुरुजी से पैंठ कर, पुस्तकों को रटकर परीक्षायें उत्तीर्ण होने का दम भरा करते हैं। सम्भव है उत्तीर्ण हो भी जावें पर यह बात अवश्य है कि वे जीवन की परीक्षा में फेल ही हुआ करते हैं। गुरु सेवक छात्र को अपने विद्यालय में ही वह सम्मान प्राप्त होता है जोकि चिर भविष्य में भी विलुप्त नहीं होता। विद्यार्थी सीखने के लिये आते हैं न कि सिखाने के लिये। उन्हें यह कभी नहीं समझना चाहिये कि हम परिपूर्ण हो गये। पुस्तकों का पढ़ना ही स्कूलों में नहीं सिखाया जाता वहाँ सबसे बड़ी बात जो सिखायी जाती है वह यह सिखाई जाती है कि तुम अपने आपको संसार में

के चरणों में प्रणाम किया तो इससे उनका मान नहीं घटा परन्तु वह पुस्तकों में लिखने योग्य एक उदाहरण बन गया। परमात्मा इन विद्यार्थियों को सुबुद्धि दे कि वे गुरु भक्त बनें।
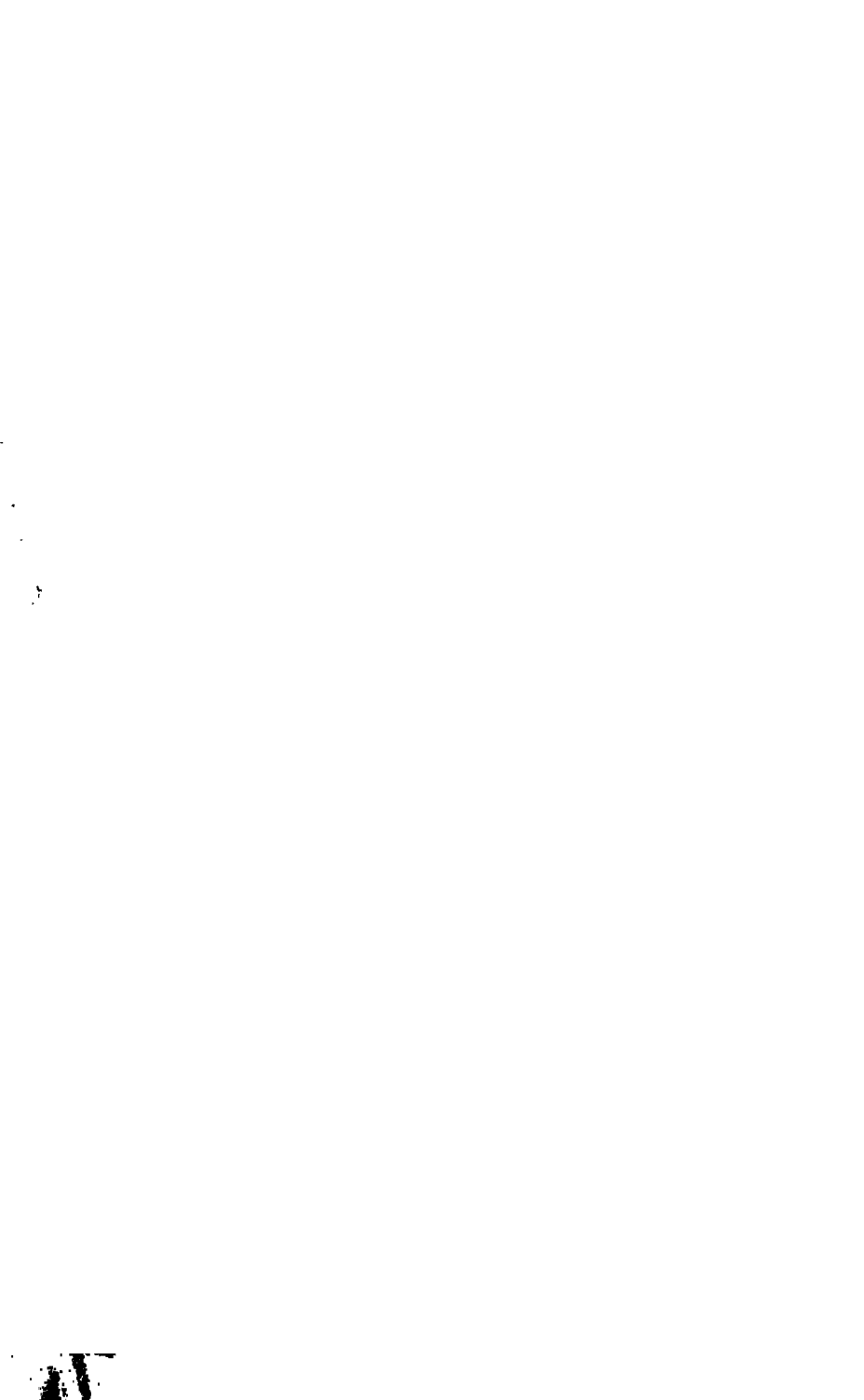
नहीं करते उनके समान निर्बुद्धि संसार में और कोई नहीं है। दुःख! नितान्त दुःख है!! कि वर्त्तमान भारतीय छात्र के जीवन का मुख्य उद्देश्य २०) की क्लर्की करने का होता है। यह उससे अधिक उठ ही कैसे सकता है। इतना हीन उद्देश्य अभी तक संसार के इतिहास में किसी छात्रका नहीं देखा गया था परन्तु भारत के छात्रों ने इस नवीन उद्देश्य की नींव डालदी। कहां तो विद्या के द्वारा उस सच्चिदानन्द के भेद को पाकर उसीमें मिल जाना भारतीय छात्र के जीवन का मुख्य उद्देश्य होता था और आज कहीं किसी का दास बन कर पेट भरलू, यही उद्देश्य, यही उसके जीवन का लक्ष्य है।

विद्या का ज्ञान के लिये न सही धन के लिये ही पढ़ो पर धन के लिये भी इतना ही उच्च उद्देश्य क्यों उसे ही यदि उद्देश्य बनाते हो तो आज ही से उसकी विविध रगतों की पहिचान में लग जाओ और पता लगाओ कि कहां तक और कैसी पुस्तकों के पढ़ने से हम धनार्जन के योग्य बन सकेंगे। यदि तुम्हारा उद्देश्य है मेरी बात को सुनते हो तो, इस उद्देश्य को ही त्याग दो तुम्हारा उद्देश्य धन नहीं तुम्हारा उद्देश्य शिक्षा प्राप्ति और उच्च ज्ञान ही होना चाहिये। उच्च ज्ञानी स्वयं अन्यान्य बातों के लिये अन्यान्य रीतियों को आविष्कृत कर लेते हैं और फिर तुम्हारे लिये धन कमाने में कठिनता न होगी।

"आजकल बहुत से ग्रेजुयेट घूम रहे हैं उन्होंने धन कमाने का तरीका क्यों नहीं निकाला, यह प्रश्न उठ ही नहीं सकता कारण वे भी उसी उद्देश्य को लेकर पढ़े हुए हैं। उनका मस्तिष्क नवीन आविष्कार के योग्य नहीं : उनकी स्मृति विलुप्त और भविष्य उनके लिये न होने के बराबर है। यदि वे भी विद्वान् होते तो भारतीय विश्व विद्यालयों में शिक्षा की दुर्दशा की शिकायत ही क्यों होती। प्रिय छात्र! तू भी उसी श्रेणी में मत जाना, तू अभी से अपने जीवन के उद्देश्य को निश्चित करले और उस उद्देश्य की पूर्ति के लिये समय के एक क्षण को भी मत खो। तू अपने मनमें इस बात का पूर्णतया दृढ़ करले कि मैं अपनी जाति और अपने देश में अग्रगण्य होने योग्य बनूंगा। "मैं भी कोई न कोई ऐसा कार्य अवश्य करूंगा जो कि मरणानन्तर भी मुझे चिरकाल के लिये मेरे देशवासियों के हृदय में जीवित रक्खेगा। 'क्या कहते हो "निश्चित भी कर लूं तो क्या मैं ऐसा बन जाऊंगा" हां अवश्य !! क्यों नहीं, जितने बड़े हुए हैं उन सब ने अपने जीवन के उद्देश्य को निश्चित किया है और उसके अनुसार करके दिखाया है। फिर तुम एक प्रकार से बन्धन में पड़ जाओगे और उसके विरुद्ध कोई कार्य नहीं करोगे। तो फिर बतओ उसी रास्ते पर चलते हुए तुम अपने नियत स्थान पर कैसे नहीं पहुंचोगे। विघ्न होंगे, अवश्य होंगे, पर यदि तुम अपने उद्देश्य पर दृढ़ रहोगे तो उन्हें भी सहर्ष झेलोगे और वे तुम्हारे आगे के रास्ते को और भी साफ

बना देंगे। एक बार कांटा चुभ भी गया तो फिर तुम देख देख कर चलोगे और बीच में पड़े कांटों को दूर फेंक कर दूसरों के लिये भी पंथ को सरल बना जाओगे। उद्देश्य यही नहीं अनेक हो सकते हैं, पर बात यह है कि उद्देश्य होना अवश्य चाहिये और यह उद्देश्य छोटा नहीं बड़ा होना चाहिये। आज ही यदि प्रति भारतीय छात्र इस उद्देश्य को स्थिर कर ले कि मैं अपने आपको आदर्श रूप बनाऊंगा तो एक ही वर्ष में देश में लाखों आदर्श पुरुष पैदा हो जांय और पुनः अवनति का नाम भी न रहे। बस अधिक क्या कहूं! अपने गुरुजनों से पूछना, वे तुम्हें इसकी विस्तृत आलोचना कर बता देंगे, पर प्रार्थना यही है कि इसके रहस्य को अवश्य समझना।

॥ श्री हरिः ॥

राजभक्ति और देशभक्ति

प्रजा और राजा में भेद मानना भयंकर भूल है। विना प्रजा के राजा नहीं और विना राजा के प्रजा नहीं। संसार के किसी समय के इतिहास को उठाकर देख लो, राजा किसी न किसी रूप में अवश्य रहता है। घर में पिता, विद्यालय में अध्यापक, सेना में सेनापति, सभा में सभापति उसी एक राजा के विभिन्न रूप हैं। प्रत्येक कार्य को सुचारु रूप से सम्पन्न करने के लिये किसी न किसी विशेष व्यक्ति की आवश्यकता होती ही है। वह चाहे वंश परम्परा से आ रहा हो, चाहे प्रजा द्वारा स्वयं नियत किया गया हो। परन्तु दोनों अवस्थाओं में यह अत्यन्त आवश्यक है कि हम उसकी आज्ञा को शिरोधार्य करें। यह भी विद्यार्थी अवस्था में ही सीखने योग्य एक सबसे बड़ा पाठ है। अनेक युवक राजधर्म को देश धर्म से भिन्न समझ कर अपने मन माने ऐसे कार्य कर बैठते हैं जिससे उनके निज उद्देश्य की पूर्ति तो दूर रही देश की दशा भी अत्यन्त जटिल हो जाती है। देश में नियम पूर्वक चलना ही राजा की सबसे अधिक प्रिय वस्तु है और इसी का नाम देश भक्ति है। देश में सुव्यवस्था रहे, प्रजा पर किसी प्रकार की आपत्ति न आवे। उसके दुःखों को सर्वथा

ट किया जाय यही राजा की सबसे उच्च अभिलाषा होती । फिर यदि हम अपने हितैषी की भक्ति की दृष्टि से न देखें हम जैसा कृतघ्नी और कौन होगा । राजभक्ति का ही नाम भक्ति है इस बात को अच्छी तरह समझ लेना चाहिये । राजभक्ति का यह अर्थ कभी नहीं हो सकता कि उत्तमोत्तम नियमों को उलंघित किया जाय । अपने चरित्र को सुधारना, सत्य बात को निडर होकर कहना, अत्याचार से न दबना यदि अपने देशवासियों पर किसी प्रकार का असत्य दोषारोपण किया जा रहा हो तो उसका प्रतिवाद करना ये ही देश भक्त के गुण होते हैं और इन्हीं गुणों की एक राजभक्त में आवश्यकता होती है, चापलूसी, वृथा षड्यन्त्र, बिना सोचे समझे बक देना, न राज भक्ति का ही लक्षण है और न देश भक्ति ही का । मेरी समझ में तो जो अपने एकान्त स्थान में बैठ कर विद्याभ्यास करते हैं वे ही सबसे बड़े देश भक्त हैं । देश का नाम ऐसे ही व्यक्तियों के नाम से उज्वल होता है । तुलसीदास और श्री वाल्मीकि इसी श्रेणी के थे ।

हां, धर्म नाश उपस्थित होनेपर प्रातः स्मरणीय महा राणा प्रताप और बीकानेर नरेश महा मना श्री कर्ण सिंहजी की तरह अपने आत्म बल का परिचय देना भी नितान्त आवश्यक है परन्तु बात बात में उछलना काम का नहीं । या तो कर दो दिखाना या चुप ही बैठे रहना, यह सिद्धान्त वृथा बकवाद करने की अपेक्षा १०० गुणा अच्छा है । राजा हमारे देश का

केन्द्र होता है और अतएव जबकि हम उसकी पूजा करते हैं तो सम्पूर्ण देश की पूजा करते हैं। निःसन्देह देश दुःखदायी तथा स्वार्थी विजातीय विधर्मी राजा प्रजा की उतनी भक्ति नहीं होती जितनी कि स्वजातीय, स्वधर्मी, और स्वदेशीय पर होती है इसके लिये प्रजा का दोष नहीं यह प्राकृतिक है कुदरती है, किन्तु जो अपने राजा के प्रति भी विरुद्धभाव रखते हैं उनके समान नीच और कोई नहीं होता। जो देश में सुव्यवस्था न चाहता हो, जो देश में शान्ति न चाहता हो उसके समान कोई देश द्रोही नहीं होता। हम आर्य हैं हम वेद स्मृति और पुराणों को मानने वाले हैं जो आज्ञा शास्त्रों ने दी है वही हमारे लिये शिरोधार्य है देश की धार्मिक पुस्तकों का तिरस्कार करना भी देश द्रोहिता का प्रत्यक्ष प्रमाण है :—

वालोऽपिनावमन्तव्यो मनुष्यइतिः भूमिपः।

महती देवता ह्येषा नररूपेण तिष्ठति॥

"राजा कितना ही छोटा क्यों न हो उसे मनुष्य, साधारण मनुष्य नहीं समझना, यह अष्ठ लोक पालों का अंशरूप एक महान् देव मनुष्य रूप में अवतरित हैं। भगवान् श्री कृष्ण भी यही कहते हैं "नराणां च नराधिपः" मनुष्यों में मैं र'जा के रूप में रहता हूं"

अतः प्रियछात्र अन्य बातों को ध्यान में लाते समय इस बात का भी ध्यान रखना कि तू सच्चा राजभक्त अर्थात् देशभक्त बने । तेरे द्वारा प्रजा में किसी प्रकार की अशान्ति की सम्भावना न हो, तेरे द्वारा किसी धार्मिक आज्ञा का विरोध न हो, यदि तू इन बातों को ध्यान में रक्खेगा तो तेरी उस राज्य में पूंछ होगी और सम्भव है तुझे ऐसे अधिकार मिलें जिन्हें प्राप्त कर न्याय से तू अपने देशकी भलाई कर सके अन्यथा न इधर का रहेगा न उधर का और तेरा जन्म वृथा ही व्यतीत होगा ।

॥ श्रीगणेशायनमः ॥

अध्ययन-(पढ़ना)

इस कर्ममय संसार में छात्र के लिये वेद ने जिस कर्म की आज्ञा दी है उस कर्म का नाम अध्ययन है। कोई भी कर्म क्यों न हों जब तक उसे पूर्ण तया मन लगाकर नहीं किया जाता तब तक वह सिद्ध नहीं हो सकता। "हमारा भाग्य ही ऐसा है कि जिस काम को हम शुरू करते हैं वही अधूरा रह जाता है" यह कहना सत्य सिद्धान्त पर लांच्छन लगाना है। यदि काम को सोच समझ कर और दृढ़ता से किया जाय तो यह कभी सम्भव नहीं कि वह पूर्ण न हो। वर्तमान भारतीय छात्र का अध्ययन वस्तुतः अधूरा है। सम्पूर्ण संसार के लिये गुरू पैदा करने वाले भारत के आधुनिक छात्र, शोक है, यह भी नहीं जानते कि किस प्रकार पढ़ा जाता है। और यही कारण है कि इतने विद्यार्थियों के पढ़ते हुए भी १०० में एक दो ही ऐसे विरले छात्र निकलते हैं जो कि कुछ २ पठित प्रतीत होते हैं। निःसन्देह विदेशीय भाषा में शिक्षित होने के कारण हमारे हृदय का विकाश नहीं होता हमारे विचार हमारी प्रकृति सिद्धि मातृ भाषा से पोषित नहीं होते तथापि बहुत कुछ दोष पठन रीति का हो है यह मानना ही होगा।

पढ़ने के लिये सर्व प्रथम यही आवश्यक है कि हमारा पढ़ने प्रेम हो।। पढ़ने को एक प्रकार का बोझा न समझ कर इसे अपना परम हितैषी समझा जाय। दूसरी बात जो ध्यान में देने योग्य है वह यही है कि पढ़ना पढ़ना ही न रहे किन्तु वह कार्य रूप में परिणित हो जाय। प्रथम कक्षा से एम० ए० तक ईश्वरभक्ति, विनय और क्षमा का पाठ पढ़ते जांय और फिर भी उसका सहस्रांश भी हम में न हो तो वह पढ़ना पढ़ना नहीं।। मानना होगा कि वह पाठ हमारे अन्तस्तल में नहीं पहुंचा, हमने उसको ध्यान से नहीं पढ़ा। पढ़ा केवल परीक्षा को पास करने के लिये।

पढ़ा क्यों कहें, यही कहेंगे कि तोते की तरह रट लिया पढ़ने का यही उद्देश्य नहीं होता। पढ़ा इस लिये जाता है कि हम दूसरों को भी पढ़ा सकें। हमारे अशिक्षित भाइयों को भी शिक्षित कर सकें। हमारी होने वाली सन्तान को मूर्ख रहने के पाप से बचा सकें। अपने देश को अपने उन्नत विचारों द्वारा उन्नत बना सकें और जिन्हें कि इस व्यापक प्रकाश का प्रकाश नहीं मिला है उन्हें भी उसके प्रकाश के दर्शन करा सकें। जब अध्ययन का यह उद्देश्य होता है। तभी वह सच्चा अध्ययन होता है। वर्तमान अध्ययन विचित्र है, संसार में अपने ढंग का निराला है। मास्टर साहब गलाफाड़ रहे हैं, कठिन से कठिन प्रश्नों को सुलझाने और समझाने के लिये अपने तरदिमाग को सूखा बना रहे हैं पर छात्र गण डेस्क की ओट में बैठे बैठे हाथा पाई

प्रवृत्ति होगी और सदा नई नई बातों को आविष्कृत करेगी। अध्ययन आनन्द के लिये ही किया जाता है और जबतक स्वयं नवीन बातों को प्रकटित करने योग्य तुम अपने आप को न बनालोगे तब तक तुम्हारा अध्ययन अधूरा ही रहेगा और न तुम्हें आनन्द ही मिलेगा। पुस्तक के किसी अंशको भी तुच्छ समझ कर न छोड़देना किन्तु वृथा पुस्तकों को भी न पढ़ना। प्राचीन भारत में केवल एक वेद की ही शिक्षा दी जाती था और उसी में सम्पूर्ण बातों का ज्ञान हो जाता था। भेड़ों की तरह ऊपर २ से घास को चबाकर ही पुस्तकों के पृष्ठों को मत उलट देना। प्रत्येक पुस्तक में एक न एक छिपा रत्न होता है उसे ढूंढ लेना। बस इसी को अध्ययन कहते हैं। विस्तृत क्यों लिखूं। इतनाही मान लोगे तो मैं अपने परिश्रम को सफल समझूंगा।

प्रवृति होगी और सदा नई नई बातों को आविष्कार करेगी। अध्ययन आनन्द के लिये ही किया जाता है और जबतक स्वयं नवीन बातों को प्रकटित करने योग्य तुम अपने आप को न बनालोगे तब तक तुम्हारा अध्ययन अधूरा ही रहेगा और न तुम्हें आनन्द ही मिलेगा। पुस्तक के किसी अंशको भी तुच्छ समझ कर न छोड़देना किन्तु वृथा पुस्तकों को भी न पढ़ना। प्राचीन भारत में केवल एक वेद की ही शिक्षा दी जाती थी और उसी में सम्पूर्ण बातों का ज्ञान हो जाता था। भेड़ों की तरह ऊपर २ से घास को चबाकर ही पुस्तकों के पृष्ठों को मत उलट देना। प्रत्येक पुस्तक में एक न एक छिपा रत्न होता है उसे ढूंढ लेना। बस इसी को अध्ययन कहते हैं। विस्तृत क्यों लिखूं। इतनाही मान लोगे तो मैं अपने परिश्रम को सफल समझूंगा।

स्मृति होगी और सदा नई नई बातों को आविष्कार करोगे। अध्ययन आनन्द के लिये ही किया जाता है और जबतक स्वयं नवीन बातों को प्रकटित करने योग्य तुम अपने आप को न बनालोगे तब तक तुम्हारा अध्ययन अधूरा ही रहेगा और न तुम्हें आनन्द ही मिलेगा। पुस्तक के किसी अंशको भी तुच्छ समझ कर न छोड़देना किन्तु वृथा पुस्तकों को भी न पढ़ना। प्राचीन भारत में केवल एक वेद की ही शिक्षा दी जाती थी और उसी में सम्पूर्ण बातों का ज्ञान हो जाता था। भेड़ों की तरह ऊपर २ से घास को चबाकर ही पुस्तकों के पृष्ठों को मत उलट देना। प्रत्येक पुस्तक में एक न एक छिपा रत्न होता है उसे ढूंढ लेना। बस इसी को अध्ययन कहते हैं। विस्तृत क्यों लिखूं। इतनाही मान लोगे तो मैं अपने परिश्रम को सफल समझूंगा।

लिये माता को उसे गर्भ में रखना ही होगा उसके लिये चिन्ता क्यों अनिवार्य के लिये यह रोना पीटना कैसा। हमारे रोने से, हमारे छटपटाने से कुछ हाथ आ जाय तो इसे भी करें नहीं तो जान बूझ कर यह दिल दुखाना किस कामका। छोड़ो चिन्ता को इसे भी सुख का मूलकारण समझो और अपने कार्य में अधिक साहस से प्रवृत होओ। परीक्षा में अनुत्तीर्ण होगये। क्या डर है अधिक परिश्रम करो। पहिले पढ़े हुए ग्रन्थ दौड़ धूप में पढ़े थे अब उनको आनन्द से पढ़ो, अधिक ज्ञान प्राप्त होगा। चिन्ता ही चिन्ता में वर्ष को बिता देना किस कर्म का। आत्मा में विश्वास करो, अन्त में सब की भलाई है इस सिद्धान्त को अटल मानो, तो कुछ होता है सब भलाई के लिये है इस वेद वाक्य को मत भूलो। प्रसन्न चित्त रहना तुम्हारे वश में है। यह न समझो कि हमारे हाथ की बात नहीं, यदि तुम ऐसा समय ही नहीं आने दोगे जिससे कि तुम्हारे हृदय में वृथा व्यथा होने लगे तो यह कभी सम्भव नहीं कि वह खिला हुआ न रहे। ईर्ष्या और कलह को दूर करो। प्रिय छात्र! छात्र का एक मात्र धर्म यही है कि वह सबसे मीठे बोल बोले, सबसे प्रेम व्यवहार रक्खे, और नम्र सुशील रहे। जो कोई मीठा बोलता है उससे सभी मीठा ही व्यवहार रखते हैं। यह नासमझी और दिल की कमजोरी का कारण है कि मनुष्य परस्पर में ईर्षा करने लगते हैं ईर्षा से दोनों तरफ की दिलजलाई के अतिरिक्त कुछ हाथ नहीं

॥ श्रीहरिः ॥

प्रसन्न चित्त

If there is a virtue in the world at which we should always aim, it is cheerfulness :—

Lord Lytton.

प्रिय मित्र !

बस, और कुछ नहीं चाहिये, प्रसन्न चित्त रहना और दूसरों को भी प्रसन्न करना। इस असार और संसार में यही सार है। यही आनन्द का मूल कारण है। प्रकृति के फूल इसी लिये खिलते हैं कि वे उस परम पिता के राज्य में प्रसन्न हैं। हंसते हैं, झूलते हैं और खिले जाते हैं। तुम और हम भी उसी पृथ्वी पर उसी विशाल आकाश के नीचे जन्म लेते हैं जिस पर और प्रकृति के प्रिय पुत्र पशु पक्षी और मूक हरित पौधे जन्म लेते हैं। खिलना, खिलाना ही हमारे जीवन का मुख्य उद्देश्य होना चाहिये। हम दुःखी क्यों होवें। क्या हमारे लिये ठंडी हवा नहीं बहती या सूर्य अपनी गर्मी नहीं देता, माता प्रकृति हरदम हमारी रक्षा के लिये तय्यार है दुःख आ भी पड़े तो भी दुःखित क्यों दिन के बाद रात होती ही है इसके लिये पश्चात्ताप क्यों? नये अंकुर के लिये बीज को गलना ही पड़ता है फिर इसके लिये सन्ताप क्यों? नव पुष्प को तैयार करने के

लिये माता को उसे गर्भ में रखना ही होगा उसके लिये चिन्ता क्यों अनिवार्य के लिये यह रोना पीटना कैसा। हमारे रोने से, हमारे छटपटाने से कुछ हाथ आ जाय तो इसे भी करें नहीं तो जान बूझ कर यह दिल दुखाना किस कामका। छोड़ो चिन्ता को इसे भी सुख का मूलकारण समझो और अपने कार्य में अधिक साहस से प्रवृत्त होओ। परीक्षा में अनुत्तीर्ण होगये। क्या डर है अधिक परिश्रम करो। पहिले पढ़े हुए ग्रन्थ दौड़ धूप में पढ़े थे अब उनको आनन्द से पढ़ो, अधिक ज्ञान प्राप्त होगा। चिन्ता ही चिन्ता में वर्ष को बिता देना किस कर्म का। आत्मा में विश्वास करो, अन्त में सब की भलाई है इस सिद्धान्त को अटल मानो, तो कुछ होता है सब भलाई के लिये है इस वेद वाक्य को मत भूलो। प्रसन्न चित्त रहना तुम्हारे वश में है। यह न समझो कि हमारे हाथ की बात नहीं, यदि तुम ऐसा समय ही नहीं आने दोगे जिससे कि के तुम्हारे हृदय में वृथा व्यथा होने लगे तो यह कभी सम्भव नहीं कि यह खिला हुआ न रहे। ईर्ष्या और कलह को दूर करो। प्रिय छात्र! छात्र का एक मात्र धर्म यही है कि वह सबसे मीठे बोल बोले, सबसे प्रेम व्यवहार रक्खे, और नम्र सुशील रहे। जो कोई मीठा बोलता है उससे सभी मीठा ही व्यवहार रखते हैं। यह नासमझी और दिल की कमजोरी का कारण है कि मनुष्य परस्पर में ईर्षा करने लगते हैं ईर्षा से दोनों तरफ की दिलजलाई के अतिरिक्त कुछ हाथ नहीं

आता। दूसरे हंसी उड़ाया करते हैं और इससे दूना दुःख होता है। बहुत से छात्र पहिले तो मित्रता कर लेते हैं फिर उसे शीघ्र ही विच्छिन्न कर देते हैं। और एक दूसरे के कट्टर शत्रु बन बैठते हैं। इससे उनका बहुत सा समय एक दूसरे की निन्दा में ही व्यतीत हो जाता है। निन्दा करने में खोये हुए समय से कोई लाभ नहीं होता। भविष्य जीवन के लिये भी कांटे बो लिये जाते हैं। अपने मुख से सदा दूसरे की भलाई को ही प्रकटित करना चाहिये जिससे दूसरे भी तुम्हारी भलाई के गुण को गावें। जिनकी सब से मैत्री होती है वे सदा ही प्रसन्न चित्त रहते हैं और परस्पर में अपना अपना ज्ञान बढ़ाते रहते हैं। छात्रावस्था में मैत्री ज्ञान के ही सम्बन्ध से होनी चाहिये। ज्ञान मैत्री स्वभाव से शुद्ध और चिरस्थायी होती है। और स्वार्थ की मैत्री मैत्री नहीं शत्रुता की भूल कारण हुआ करती है। आत्मा का यह नियम है कि वह बिना पवित्र कार्य के किये कभी प्रसन्न नहीं होता। बुरा काम कर, किसी को नीचा दिखाकर जो और से हंसा करते हैं वह शैतान की हंसी होती है। उसे अन्त में रोना पड़ता है। इस लिये यदि तुम प्रसन्न होना चाहो तो हृदय को पवित्र, वाणी को, मधुर, और अपने कर्मों को धार्मिक रूप में परिणित करदो। साथ ही यह भी ध्यान में रहे कि जबतक तुम अपने प्रतिदिन के कार्य को पूरा न करलोगे तब तक तुम्हें प्रसन्नता प्राप्त नहीं होगी। अधूरे, बीच में छोड़े हुए कार्य का

बोझा जब तक तुम्हें दबाये रहेगा तब तक तुम सुख से नहीं सो सकोगे और खाट पर लेटे २ पछताया करोगे। तुम चाहे कितने भी आलसी क्यों न होओ किन्तु तुममें सदा जागृत परमात्मा का जो अंश है वह तुम्हें अपने कर्म को पूरा किये बिना शान्ति से न रहने देगा। भगवान भी एसा आज्ञा देते हैं:—

नियतं कुरु कर्मत्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः।
शरीर यात्राऽपि च ते न प्रसिद्धेदकर्मणः॥
(गीता)

मनुष्य!

इस बात को मत भूल कि कुछ न करने की अपेक्षा कुछ करना अत्यन्त श्रेष्ठ है। कर्म के किये बिना शरीर की यात्रा का भी निर्वाह नहीं हो सकता।

हमारे मीमांसा शास्त्र ने तो यह प्रत्यक्ष सिद्ध कर दिया है कि परमात्मा कर्म ही है। इसलिये जो कर्म करते हैं वे परमात्मा को सदा अपने साथ में रखते है। फिर प्रसन्न क्यों न होंगे।

और सुनिये:—

प्रसादात्सर्व दुःखानां हानिरस्योपजायते।
प्रसन्नचेतसोह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते।

प्रसन्नचित्त मनुष्य के सम्पूर्ण दुःखों का नाश हो जाता है। दुःख नाश होने पर बुद्धि निर्मल और कर्त्तव्य अकर्त्तव्य को समझने वाली बन जाती है।

आता । दूसरे हंसी उड़ाया करते हैं और इससे दु
होता है । बहुत से छात्र पहिले तो मित्रता कर लेते
उसे शीघ्र ही विच्छिन्न कर देते हैं । और एक दूसरे
शत्रु बन बैठते हैं । इससे उनका बहुत सा समय
की निन्दा में ही व्यतीत हो जाता है । निन्दा
हुए समय से कोई लाभ नहीं होता । भविष्य
भी कांटे बो लिये जाते हैं । अपने मुख से
भलाई को ही प्रकटित करना चाहिये जिससे दू
भलाई के गुण को गावें । जिनकी सब से
सदा ही प्रसन्न चित्त रहते हैं और परस्पर
ज्ञान बढ़ाते रहते हैं । छात्रावस्था में
सम्बन्ध से होनी चाहिये । ज्ञान मैत्री स्व
चिरस्थायी होती है । और स्वार्थ की मै
की मूल कारण हुआ करती है । आ
है कि वह बिना पवित्र कार्य के वि
होता । बुरा काम कर, किसी को नी
से हंसा करते हैं वह शैतान की हंसी है
पड़ता है । इस लिये यदि तुम प्रसन्न
पवित्र, बाणी को, मधुर, और अपने
परिणित करदो । साथ ही यह भी
अपने प्रतिदिन के कार्य को
प्रसन्नता प्राप्त नहीं होगी ।

यथार्थ दर्शन

यदि आप भारतीय सामाजिक धार्मिक और राजनैतिक विषयों को जानने के लिये उत्सुक हों और यदि आप पाश्चात्य तथा पूर्वीय विद्वानों के विचारों के संघर्ष को देखने के अभिलाषी हों तो इस पुस्तक को अवश्य पढ़ें । मूल्य केवलमात्र ॥)

संस्कृत बालबोधिनी के ५ भाग भी तय्यार हैं । इनसे सहज ही में संस्कृत का ज्ञान होता है । मू० के० ॥=)

श्री पं० देवी प्रसाद जी शास्त्री,

पुरू० बो० आर०,

बीकानेर ।

अतः प्रिय छात्र प्रसन्न चित्त अर्थात् कर्म योगी बन। भारत वर्ष कर्मवीरों को चाहता है। कोरे फैशन और सिग्रेटों के दास विद्यार्थियों को नहीं चाहता। ये देश की दशा को सुधारना तो दूर रहा अपनी सन्तान को भी किसी गहरे गर्त में डुबादेंगे। परमात्मा बचावे इन वर्तमान प्रसन्नचित रहने वाले अंग्रेजी भाषा भाषी विद्वानों के संसर्ग, से दूसरों को दुःख देकर निजस्वार्थ की सिद्धि करना ही इनके जीवन का मुख्य उद्देश्य है ऐसी प्रसन्न चित्तता भी बुरी, जिससे कि औरों के हृदय में व्यथा हो इस लिये :—

उत्तिष्ठत, जाग्रत, प्राप्य वरान्निबोधत।

Arise ! Awake !! and stop not till the goal is reached !!!

॥ इति ॥

यथार्थ दर्शन

यदि आप भारतीय सामाजिक धार्मिक और राजनैतिक विषयों को जानने के लिये उत्सुक हों और यदि आप पाश्चात्य तथा पूर्वीय विद्वानों के विचारों के संघर्ष को देखने के अभिलाषी हों तो इस पुस्तक को अवश्य पढ़ें। मूल्य केवलमात्र ॥)

संस्कृत बालबोधिनी के ५ भाग भी तय्यार हैं। इनसे सहज ही में संस्कृत का ज्ञान होता है। मू० के० ॥=)

श्री पं० देवी प्रसाद जी शास्त्री,

गुरू० मी० आर०,

बीकानेर।

पुस्तक मिलने के पते :—

[१] लाला बृजलाल महम निवासी,
मु० सूरतगढ़, बीकानेर।

[२] पं० देवीप्रसाद शास्त्री,
चूरू, बीकानेर।

[३] मैनेजर ओंकार प्रेस, प्रयाग।